

श्री राम-भरतादि का संवाद

चौपाई :

*** गुरु अनुरागु भरत पर देखी। राम हृदयँ आनंदु बिसेषी॥ भरतहि धरम धुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी॥1॥

भावार्थ:

भरतजी पर गुरुजी का स्नेह देखकर श्री रामचन्द्रजी के हृदय में विशेष आनंद हुआ। भरतजी को धर्मधुरंधर और तन, मन, वचन से अपना सेवक जानकर-॥1॥

*** बोले गुरु आयस अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगलमूला॥ नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुअन भरत सम भाई॥2॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी गुरु की आज्ञा अनुकूल मनोहर कोमल और कल्याण के मूल वचन बोले- हे नाथ! आपकी सौगंध और पिताजी के चरणों की दुहाई है (मैं सत्य कहता हूँ कि) विश्वभर में भरत के समान कोई भाई हुआ ही नहीं॥2॥

*** जे गुरु पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥ राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥3॥

भावार्थ:

जो लोग गुरु के चरणकमलों के अनुरागी हैं वे लोक में (लौकिक दृष्टि से) भी और वेद में (परमार्थिक दृष्टि से) भी बड़भागी होते हैं! (फिर) जिस पर आप (गुरु) का ऐसा स्नेह है, उस भरत के भाग्य को कौन कह सकता है?॥3॥

*** लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥ भरतु कहहिं सोइ किँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥4॥

भावार्थ:

छोटा भाई जानकर भरत के मुँह पर उसकी बड़ाई करने में मेरी बुद्धि सकुचाती है। (फिर भी मैं तो यही कहूँगा कि) भरत जो कुछ कहें, वही करने में भलाई है। ऐसा कहकर श्री रामचन्द्रजी चुप हो रहे॥4॥

दोहा :

*** तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात। कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कै बात॥259॥

भावार्थ:

तब मुनि भरतजी से बोले- हे तात! सब संकोच त्यागकर कृपा के समुद्र अपने प्यारे भाई से अपने हृदय की बात कहो॥259॥

चौपाई :

*** सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई॥ लखि अपने सिर सबु छरु भारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू॥1॥

भावार्थ:

मुनिके वचन सुनकर और श्री रामचन्द्रजी का रुख पाकर गुरु तथा स्वामी को भरपेट अपने अनुकूल जानकर सारा बोझ अपने ही ऊपर समझकर भरतजी कुछ कह नहीं सकते। वे विचार करने लगे॥1॥

*** पुलकि सरीर सभाँ भए ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े॥ कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहौं मैं काहा॥2॥

भावार्थ:

शरीर से पुलकित होकर वे सभा में खड़े हो गए। कमल के समान नेत्रों में प्रेमाश्रुओं की बाढ़ आ गई। (वे बोले-) मेरा कहना तो मुनिनाथ ने ही निबाह दिया (जो कुछ मैं कह सकता था वह उन्होंने ही कह दिया)। इससे अधिक मैं क्या कहूँ?॥2॥

*** मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥ मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥3॥

भावार्थ:

अपने स्वामी का स्वभाव मैं जानता हूँ। वे अपराधी पर भी कभी क्रोध नहीं करते। मुझ पर तो उनकी विशेष कृपा और स्नेह है। मैंने खेल में भी कभी उनकी रीस (अप्रसन्नता) नहीं देखी॥3॥

*** सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥ मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहूँ खेल जितावहिं मोही॥4॥

भावार्थ:

बचपन में ही मैंने उनका साथ नहीं छोड़ा और उन्होंने भी मेरे मन को कभी नहीं तोड़ा (मेरे मन के प्रतिकूल कोई काम नहीं किया)। मैंने प्रभु की कृपा की रीति को हृदय में भलीभाँति देखा है (अनुभव किया है)। मेरे हारने पर भी खेल में प्रभु मुझे जिता देते रहे हैं॥4॥

दोहा :

*** महूँ सनेह स्कोच बस सनमुख कही न बैन। दरसन तृपित न आजु लागि प्रेम पिआसे नैन॥260॥

भावार्थ:

मैंने भी प्रेम और संकोचवश कभी सामने मुँह नहीं खोला। प्रेम के प्यासे मेरे नेत्र आज तक प्रभु

के दर्शन से तृप्त नहीं हुए॥260॥

चौपाई :

*** बिधि न सकेऊ सहि मोर दुलारा। नीच बीचु जननी मिस पारा॥ यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि को भा॥॥

भावार्थ:

परन्तु विधाता मेरा दुलार न सह सका। उसने नीच माता के बहाने (मेरे और स्वामी के बीच) अंतर डाल दिया। यह भी कहना आज मुझे शोभा नहीं देता, क्योंकि अपनी समझ से कौन साधु और पवित्र हुआ है? (जिसको दूसरे साधु और पवित्र मानें, वही साधु है)॥1॥

*** मातु मंदि में साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥ फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक काली॥2॥

भावार्थ:

माता नीच है और मैं सदाचारी और साधु हूँ ऐसा हृदय में लाना ही करोड़ों दुराचारों के समान है। क्या कोदों की बाली उत्तम धान फल सकती है? क्या काली घोंघी मोती उत्पन्न कर सकती है?॥2॥

*** सपनेहूँ दोसक लेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू॥ बिनु समुझें निज अघ परिपाकू। जारिउँ जायँ जननि कहि काकू॥3॥

भावार्थ:

स्वप्न में भी किसी को दोष का लेश भी नहीं है। मेरा अभाग्य ही अथाह समुद्र है। मैंने अपने पापों का परिणाम समझे बिना ही माता को कटु वचन कहकर व्यर्थ ही जलाया॥3॥

*** हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहिं भल मोरा॥ गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥4॥

भावार्थ:

मैं अपने हृदय में सब ओर खोज कर हार गया (मेरी भलाई का कोई साधन नहीं सूझता)। एक ही प्रकार भले ही (निश्चय ही) मेरा भला है। वह यह है कि गुरु महाराज सर्वसमर्थ हैं और श्री सीता-रामजी मेरे स्वामी हैं। इसी से परिणाम मुझे अच्छा जान पड़ता है॥4॥

दोहा :

*** साधु सभाँ गुर प्रभु निकट कहउँ सुथल सत्माउ। प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ॥261॥

भावार्थ:

साधुओं की सभा में गुरुजी और स्वामी के समीप इस पवित्र तीर्थ स्थान में मैं सत्यभाव से कहता हूँ। यह प्रेम है या प्रपंच (छल-कपट)? झूठ है या सच? इसे (सर्वज्ञ) मुनि वशिष्ठजी और

(अन्तर्यामी) श्री रघुनाथजी जानते हैं॥261॥

चौपाई :

*** भूपति मरन प्रेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी॥ देखि न जाहिं बिकल महतारीं।
जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं॥1॥

भावार्थ:

प्रेम के प्रण को निबाहकर महाराज (पिताजी) का मरना और माता की कुबुद्धि, दोनों का सारा संसार साक्षी है। माताएँ व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जातीं। अवधपुरी के नर-नारी दुःसह ताप से जल रहे हैं॥1॥

*** महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला॥ सुनि बन गवनु कीन्ह
रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा॥2॥ बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकरुसाखि रहेउँ
एहि घाएँ॥ बहुरि निहारि निषाद सनेह। कुलिस कठिन उर भयउ नबेहू॥3॥

भावार्थ:

मैं ही इन सारे अनर्थों का मूल हूँ यह सुन और समझकर मैंने सब दुःख सहा है। श्री रघुनाथजी लक्ष्मण और सीताजी के साथ मुनियों का सा वेष धारणकर बिना जूते पहने पाँव-प्यादे (पैदल) ही वन को चले गए, यह सुनकर, शंकरजी साक्षी हैं, इस घाव से भी मैं जीता रह गया (यह सुनते ही मेरे प्राण नहीं निकल गए)! फिर निषादराज का प्रेम देखकर भी इस वज्र से भी कठोर हृदय में छेद नहीं हुआ (यह फटा नहीं)॥2-3॥

*** अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जइ सबइ सहाई॥ जिन्हहि निरखि मग साँपिनि
बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी॥4॥

भावार्थ:

अब यहाँ आकर सब आँखों देख लिया। यह जड़ जीव जीता रह कर सभी सहावेगा। जिनको देखकर रास्ते की साँपिनी और बीछी भी अपने भयानक विष और तीव्र क्रोध को त्याग देती हैं-
॥4॥

दोहा :

*** तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जहि। तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ
काहि॥262॥

भावार्थ:

वे ही श्री रघुनंदन, लक्ष्मण और सीता जिसको शत्रु जान पड़े, उस कैकेयी के पुत्र मुझको छोड़कर दैव दुःसह दुःख और किसे सहावेगा?॥262॥

चौपाई :

*** सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी॥ सोक मगन सब सभाँ खभारू। मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू॥॥

भावार्थ:

अत्यन्त व्याकुल तथा दुःख, प्रेम, विनय और नीति में सनी हुई भरतजी की श्रेष्ठ वाणी सुनकर सब लोग शोक में मग्न हो गए, सारी सभा में विषाद छा गया। मानो कमल के वन पर पाला पड़ गया हो॥1॥

*** कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी॥ बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू॥2॥

भावार्थ:

तब ज्ञानी मुनि वशिष्ठजी ने अनेक प्रकार की पुरानी (ऐतिहासिक) कथाएँ कहकर भरतजी का समाधान किया। फिर सूर्यकुल रूपी कुमुदवन के प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा श्री रघुनंदन उचित वचन बोले-॥2॥

*** तात जायँ जियँ करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी॥ तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें॥3॥

भावार्थ:

हे तात! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। जीव की गति को ईश्वर के अधीन जानो। मेरे मत में (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालों और (स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल) तीनों लोकों के सब पुण्यात्मा पुरुष तुम से नीचे हैं॥3॥

*** उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोक परलोक नसाई॥ दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥4॥

भावार्थ:

हृदय में भी तुम पर कुटिलता का आरोप करने से यह लोक (यहाँ के सुख, यश आदि) बिगड़ जाता है और परलोक भी नष्ट हो जाता है (मरने के बाद भी अच्छी गति नहीं मिलती)। माता कैकेयी को तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं, जिन्होंने गुरु और साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया है॥4॥

दोहा :

*** मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार। लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार॥263॥

भावार्थ:

हे भरत! तुम्हारा नाम स्मरण करते ही सब पाप, प्रपंच (अज्ञान) और समस्त अमंगलों के समूह मिट जाएंगे तथा इस लोक में सुंदर यश और परलोक में सुख प्राप्त होगा॥263॥

चौपाई :

*** कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी॥ तात कुतरक करहु जनि जाएँ।
बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ॥1॥

भावार्थ:

हे भरत! मैं स्वभाव से ही सत्य कहता हूँ, शिवजी साक्षी हैं, यह पृथ्वी तुम्हारी ही रखी रह रही है।
हे तात! तुम व्यर्थ कुतर्क न करो। वैर और प्रेम छिपाए नहीं छिपते॥1॥

*** मुनिगन निकट बिहग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं॥ हित अनहित पसु पच्छिउ
जाना। मानुष तनु गुन ग्यान निधाना॥2॥

भावार्थ:

पक्षी और पशु मुनियों के पास (बेधड़क) चले जाते हैं, पर हिंसा करने वाले बधिकों को देखते ही
भाग जाते हैं। मित्र और शत्रु को पशु-पक्षी भी पहचानते हैं। फिर मनुष्य शरीर तो गुण और ज्ञान
का भंडार ही है॥2॥

*** तात तुम्हहि में जानउँ नीकें। करौं काह असमंजस जीकें॥ राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु
परिहरेउ पेम पन लागी॥3॥

भावार्थ:

हे तात! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। क्या करूँ जी में बड़ा असमंजस (दुविधा) है। राजा ने
मुझे त्याग कर सत्य को रखा और प्रेम-प्रण के लिए शरीर छोड़ दिया॥3॥

*** तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तैं अधिक तुम्हार सँकोचू॥ ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा।
अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥4॥

भावार्थ:

उनके वचन को मेटते मन में सोच होता है। उससे भी बढ़कर तुम्हारा संकोच है। उस पर भी
गुरुजी ने मुझे आज्ञा दी है इसलिए अब तुम जो कुछ कहो, अवश्य ही मैं वही करना चाहता
हूँ॥4॥

दोहा :

*** मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइआजु। सत्यसंध रघुबर बचन सुनि भा सुखी
समाजु॥264॥

भावार्थ:

तुम मन को प्रसन्न कर और संकोच को त्याग कर जो कुछ कहो, मैं आज वही करूँ। सत्य प्रतिज्ञ
रघुकुल श्रेष्ठ श्री रामजी का यह वचन सुनकर सारा समाज सुखी होगया॥264॥

चौपाई :

*** सुर गन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू॥ बनत उपाउ करत कछु नाहीं।
राम सरन सब गे मन माहीं॥1॥

भावार्थ:

देवगणों सहित देवराज इन्द्र भयभीत होकर सोचने लगे कि अब बना-बनाया काम बिगड़ना ही चाहता है। कुछ उपाय करते नहीं बनता। तब वे सब मन ही मन श्री रामजी की शरण गए॥1॥
***बहुरि बिचारि परस्पर कहहीं। रघुपति भगत भगति बस अहीं॥ सुधि करि अंबरीष दुरबासा।
भे सुर सुरपति निपट निरसा॥2॥

भावार्थ:

फिर वे विचार करके आपस में कहने लगे कि श्री रघुनाथजी तो भक्त की भक्ति के वश हैं। अम्बरीष और दुर्वासा की (घटना) याद करके तो देवता और इन्द्र बिल्कुल ही निराश हो गए॥2॥
*** सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा॥ लगी लगी कान कहहिं धुनि
माथा। अब सुर काज भरत के हाथा॥3॥

भावार्थ:

पहले देवताओं ने बहुत समय तक दुःख सहे। तब भक्त प्रहलाद ने ही नृसिंह भगवान को प्रकट किया था। सब देवता परस्पर कानों से लग-लगकर और सिर धुनकर कहते हैं कि अब (इस बार) देवताओं का काम भरतजी के हाथ है॥3॥
*** आन उपाउ न देखिअ देवा। मानत रामु सुसेवक सेवा॥ हियँ सपेम सुमिरहु सब भरतहि। निज
गुन सील राम बस करतहि॥4॥

भावार्थ:

हे देवताओं! और कोई उपाय नहीं दिखाई देता। श्री रामजी अपने श्रेष्ठ सेवकों की सेवा को मानते हैं (अर्थात् उनके भक्त की कोई सेवा करता है, तो उस पर बहुत प्रसन्न होते हैं)। अतएव अपने गुण और शील से श्री रामजी को वश में करने वाले भरतजी का ही सब लोग अपने-अपने हृदय में प्रेम सहित स्मरण करो॥4॥

दोहा :

*** सुनि सुर मत सुरगुर कहेउ भल तुम्हार बड़ भागु। सकल सुमंगल मूल जग भरत चरन
अनुरागु॥265॥

भावार्थ:

देवताओं का मत सुनकर देवगुरु बृहस्पतिजी ने कहा- अच्छा विचार किया, तुम्हारे बड़े भाग्य हैं। भरतजी के चरणों का प्रेम जगत में समस्त शुभ मंगलों का मूल है॥265॥

चौपाई :

*** सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई॥ भरत भगति तुम्हरे मन आई। तजहु
सोचु बिधि बात बनाई॥1॥

भावार्थ:

सीतानाथ श्री रामजी के सेवक की सेवा सैकड़ों कामधेनुओं के समान सुंदर है। तुम्हारे मन में भरतजी की भक्ति आई है, तो अब सोच छोड़ दो। विधाता ने बात बना दी॥1॥

*** देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सजह सुभायँ बिबस रघुराऊ॥ मन थिर करहु देव डरु नाहीं। भरतहि जानि राम परिछाहीं॥2॥

भावार्थ:

हे देवराज! भरतजी का प्रभाव तो देखो। श्री रघुनाथजी सहज स्वभाव से ही उनके पूर्णरूप से वश में हैं। हे देवताओं ! भरतजी को श्री रामचन्द्रजी की परछाई (परछाई की भाँति उनका अनुसरण करने वाला) जानकर मन स्थिर करो, डर की बात नहीं है॥2॥

*** सुनि सुरगुर सुरसंमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहि सकोचू॥ निज सिर भारु भरत जियँ जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना॥3॥

भावार्थ:

देवगुरु बृहस्पतिजी और देवताओं की सम्मति (आपस का विचार) और उनका सोच सुनकर अन्तर्यामी प्रभु श्री रामजी को संकोच हुआ। भरतजी ने अपने मन में सब बोझा अपने ही सिर जाना और वे हृदय में करोड़ों (अनेकों) प्रकार के अनुमान (विचार) करने लगे॥3॥

*** करि बिचारु मन दीन्ही ठीका। राम रजायस आपन नीका॥ निज पन तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा॥॥

भावार्थ:

सब तरह से विचार करके अंत में उन्होंने मन में यही निश्चय किया कि श्री रामजी की आज्ञा में ही अपना कल्याण है। उन्होंने अपना प्रण छोड़कर मेरा प्रण रखा। यह कुछ कम कृपा और स्नेह नहीं किया (अर्थात् अत्यन्त ही अनुग्रह और स्नेह किया)॥4॥

दोहा :

*** कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब बिधि सीतानाथ। करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज जुग हाथ॥266॥

भावार्थ:

श्री जानकीनाथजी ने सब प्रकार से मुझ पर अत्यन्त अपार अनुग्रह किया। तदनन्तर भरतजी दोनों करकमलों को जोड़कर प्रणाम करके बोले-॥266॥

चौपाई :

*** कहीं कहावों का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी॥ गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कलपित सूला॥1॥

भावार्थ:

हे स्वामी! हे कृपा के समुद्र! हे अन्तर्यामी! अब मैं (अधिक) क्या कहूँ और क्या कहाऊँ? गुरु

महाराज को प्रसन्न और स्वामी को अनुकूल जानकर मेरे मलिनमन की कल्पित पीड़ा मिट गई॥1॥

*** अपडर डरेउँ न सोच समूलें। रबिहि न दोसु देव दिसि भूलें॥ मोर अभागु मातु कुटिलाई।
बिधि गति बिषम काल कठिनाई॥2॥

भावार्थ:

मैं मिथ्या डर से ही डर गया था। मेरे सोच की जड़ ही न थी। दिशा भूल जाने पर हे देव! सूर्य का दोष नहीं है। मेरा दुर्भाग्य, माता की कुटिलता, विधाता की टेढ़ी चाल और काल की कठिनता,॥2॥

*** पाउ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला॥ यह नइ रीति न राउरि होई।
लोकहुँ बेद बिदित नहिं गोई॥3॥

भावार्थ:

इन सबने मिलकर पैर रोपकर (प्रण करके) मुझे नष्ट कर दिया था, परन्तु शरणागत के रक्षक आपने अपना (शरणागत की रक्षा का) प्रण निबाहा (मुझे बचा लिया)। यह आपकी कोई नई रीति नहीं है। यह लोक और वेदों में प्रकट है, छिपी नहीं है॥3॥

*** जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाई॥ देउ देवतरु सरिस सुभाऊ।
सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ॥4॥

भावार्थ:

सारा जगत बुरा (करने वाला) हो, किन्तु हे स्वामी! केवल एक आप ही भले (अनुकूल) हों, तो फिर कहिए, किसकी भलाई से भला हो सकता है? हे देव! आपका स्वभाव कल्पवृक्ष के समान है, वह न कभी किसी के सम्मुख (अनुकूल) है, न विमुख (प्रतिकूल)॥4॥

दोहा :

*** जाइ निकट पहिचानि तरु छाहँ समनि सब सोच। मागत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल
पोच॥267॥

भावार्थ:

उस वृक्ष (कल्पवृक्ष) को पहचानकर जो उसके पास जाए, तो उसकी छाया ही सारी चिंताओं का नाश करने वाली है। राजा-रंक, भले-बुरे, जगत में सभी उससे माँगते ही मनचाही वस्तु पाते हैं॥267॥

चौपाई :

*** लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभु नहिं मन संदेहू ॥ अब करुनाकर कीजिअ
सोई। जन हित प्रभु चित छोभु न होई॥1॥

भावार्थ:

गुरु और स्वामी का सब प्रकार से स्नेह देखकर मेरा क्षोभ मिट गया, मन में कुछ भी संदेह नहीं रहा। हे दया की खान! अब वही कीजिए जिससे दास के लिए प्रभु के चित्त में क्षोभ (किसी प्रकार का विचार) न हो॥1॥

*** जो सेवक साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥ सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई॥2॥

भावार्थ:

जो सेवक स्वामी को संकोच में डालकर अपना भला चाहता है, उसकी बुद्धि नीच है। सेवक का हित तो इसी में है कि वह समस्त सुखों और लोभों को छोड़कर स्वामी की सेवा ही करे॥2॥

*** स्वार्थु नाथ फिरें सबही का। किँ रजाइ कोटि बिधि नीका॥ यह स्वार्थ परमार्थ सारु। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारु॥3॥

भावार्थ:

हे नाथ! आपके लौटने में सभी का स्वार्थ है और आपकी आज्ञा पालन करने में करोड़ों प्रकार से कल्याण है। यही स्वार्थ और परमार्थ का सार (निचोड़) है, समस्त पुण्यों का फल और सम्पूर्ण शुभ गतियों का श्रृंगार है॥3॥

*** देव एक विनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥ तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना॥4॥

भावार्थ:

हे देव! आप मेरी एक विनती सुनकर, फिर जैसा उचित हो वैसा ही कीजिए। राजतिलक की सब सामग्री सजाकर लाई गई है, जो प्रभु का मन माने तो उसे सफल कीजिए (उसका उपयोग कीजिए)॥4॥

दोहा :

*** सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ। नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं में साथ॥268॥

भावार्थ:

छोटे भाई शत्रुघ्न समेत मुझे वन में भेज दीजिए और (अयोध्या लौटकर) सबको सनाथ कीजिए। नहीं तो किसी तरह भी (यदि आप अयोध्या जाने को तैयार न हों) हे नाथ! लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों भाइयों को लौटा दीजिए और मैं आपके साथ चलूँ॥268॥

चौपाई :

*** नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहु रिअ सीय सहित रघुराई॥ जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई॥1॥

भावार्थ:

अथवा हम तीनों भाई वन चले जाएँ और हे श्री रघुनाथजी! आप श्री सीताजी सहित (अयोध्या को) लौट जाइए। हे दयासागर! जिस प्रकार से प्रभु का मन प्रसन्न हो, वही कीजिए॥1॥

*** देवँ दीन्ह सबु मोहि अभारु। मोरें नीति न धरम बिचारु॥ कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥2॥

भावार्थ:

हे देव! आपने सारा भार (जिम्मेवारी) मुझ पर रख दिया। पर मुझमें न तो नीति का विचार है, न धर्म का। मैं तो अपने स्वार्थ के लिए सब बातें कह रहा हूँ। आर्त (दुःखी) मनुष्य के चित्त में चेत (विवेक) नहीं रहता॥2॥

*** उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई॥ अस में अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेहँ सराहत साधू॥3॥

भावार्थ:

स्वामी की आज्ञा सुनकर जो उत्तर दे, ऐसे सेवक को देखकर लज्जा भी लजा जाती है। मैं अवगुणों का ऐसा अथाह समुद्र हूँ (कि प्रभु को उत्तर दे रहा हूँ), किन्तु स्वामी (आप) स्नेह वश साधु कहकर मुझे सराहते हैं॥3॥

*** अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइँ न पावा॥ प्रभु पद सपथ कहउँ सति भाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ॥4॥

भावार्थ:

हे कृपालु! अब तो वही मत मुझे भाता है, जिससे स्वामी का मन संकोच न पावे। प्रभु के चरणों की शपथ है, मैं सत्यभाव से कहता हूँ, जगत के कल्याण के लिए एक यही उपाय है॥4॥

दोहा :

*** प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब। सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवेरेब॥269॥

भावार्थ:

प्रसन्न मन से संकोच त्यागकर प्रभु जिसे जो आज्ञा देंगे, उसे सब लोग सिर चढ़ा-चढ़ाकर (पालन) करेंगे और सब उपद्रव और उलझनें मिट जाएँगी॥269॥

चौपाई :

*** भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥ असमंजस बस अवध नेवासी। प्रमुदित मन तापस बनबासी॥1॥

भावार्थ:

भरतजी के पवित्र वचन सुनकर देवता हर्षित हुए और 'साधु-साधु' कहकर सराहना करते हुए देवताओं ने फूल बरसाए। अयोध्या निवासी असमंजस के वश हो गए (कि देखें अब श्री रामजी

क्या कहते हैं) तपस्वी तथा वनवासी लोग (श्री रामजी के वन में बने रहने की आशा से) मन में परम आनन्दित हुए॥॥

*** चुपहिं रहे रघुनाथ सँकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची॥ जनक दूत तैहि अवसर आए। मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए॥२॥

भावार्थ:

किन्तु संकोची श्री रघुनाथजी चुप ही रह गए। प्रभु की यह स्थिति (मौन) देख सारी सभा सोच में पड़ गई। उसी समय जनकजी के दूत आए, यह सुनकर मुनि वशिष्ठजी ने उन्हें तुरंत बुलवा लिया॥२॥

*** करि प्रनाम तिन्ह रामु निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे॥ दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥३॥

भावार्थ:

उन्होंने (आकर) प्रणाम करके श्री रामचन्द्रजी को देखा। उनका (मुनियों का सा) वेष देखकर वे बहुत ही दुःखी हुए। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ने दूतों से बात पूछी कि राजा जनक का कुशल समाचार कहां॥३॥

*** सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चरबर जोरें हाथा॥ बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं॥४॥

भावार्थ:

यह (मुनि का कुशल प्रश्न) सुनकर सकुचाकर पृथ्वी पर मस्तक नवाकर वे श्रेष्ठ दूत हाथ जोड़कर बोले- हे स्वामी! आपका आदर के साथ पूछना, यही हे गोसाईं! कुशल का कारण हो गया॥४॥

दोहा :

*** नाहिं त कोसलनाथ के साथ कुसल गइ नाथ। मिथिला अवध बिसेष तें जगु सब भयउ अनाथ॥२७०॥

भावार्थ:

नहीं तो हे नाथ! कुशल-क्षेम तो सब कोसलनाथ दशरथजी के साथ ही चली गई। (उनके चले जाने से) यों तो सारा जगत ही अनाथ (स्वामी के बिना असहाय) हो गया, किन्तु मिथिला और अवध तो विशेष रूप से अनाथ हो गया॥२७०॥

चौपाई :

*** कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोकबस बौरा॥ जेहिं देखे तेहि समय बिदेह। नामु सत्य अस लाग न केहू॥॥

भावार्थ:

अयोध्यानाथ की गति (दशरथजी का मरण) सुनकर जनकपुर वासी सभी लोग शोकवश बावले हो

गए (सुध-बुध भूल गए)। उस समय जिन्होंने विदेह को (शोकमग्न) देखा, उनमें से किसी को ऐसा न लगा कि उनका विदेह (देहाभिमानरहित) नाम सत्य है! (क्योंकि देहाभिमान से शून्य पुरुष को शोक कैसा?)॥1॥

*** रानि कुचालि सुनत नरपालहि। सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहि॥ भरत राज रघुबर बनबासू। भा मिथिलेसहि हृदयँ हराँसू॥2॥

भावार्थ:

रानी की कुचाल सुनकर राजा जनकजी को कुछ सूझ न पड़ा, जैसे मणि के बिना साँप को नहीं सूझता। फिर भरतजी को राज्य और श्री रामचन्द्रजी को वनवास सुनकर मिथिलेश्वर जनकजी के हृदय में बड़ा दुःख हुआ॥2॥

*** नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू॥ समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ॥3॥

भावार्थ:

राजा ने विद्वानों और मंत्रियों के समाज से पूछा कि विचारकर कहिए, आज (इस समय) क्या करना उचित है? अयोध्या की दशा समझकर और दोनों प्रकार से असमंजस जानकर 'चलिए या रहिए?' किसी ने कुछ नहीं कहा॥3॥

*** नृपहिं धीर धरि हृदयँ बिचारी। पठए अवध चतुर चर चारी॥ बूझि भरत सति भाउ कुभाऊ। आएहु बेगि न होइ लखाऊ॥4॥

भावार्थ:

(जब किसी ने कोई सम्मति नहीं दी) तब राजा ने धीरज धर हृदय में विचारकर चार चतुर गुप्तचर (जासूस) अयोध्या को भेजे (और उनसे कह दिया कि) तुम लोग (श्री रामजी के प्रति) भरतजी के सद्भाव (अच्छे भाव, प्रेम) या दुर्भाव (बुरा भाव, विरोध) का (यथार्थ) पता लगाकर जल्दी लौट आना, किसी को तुम्हारा पता न लगने पावे॥4॥

दोहा :

*** गए अवध चर भरत गति बूझि देखि करतूति। चले चित्रकूटहि भरतु चार चले तेरहूति॥271॥

भावार्थ:

गुप्तचर अवध को गए और भरतजी का ढंग जानकर और उनकी करनी देखकर, जैसे ही भरतजी चित्रकूट को चले, वे तिरहुत (मिथिला) को चल दिए॥271॥

चौपाई :

*** दूतन्ह आइ भरत कइ करनी। जनक समाज जथामति बरनी॥ सुनि गुर परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेहँ बिकल अति॥1॥

भावार्थ:

(गुप्त) दूतों ने आकर राजा जनकजी की सभा में भरतजी की करनी का अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन किया। उसे सुनकर गुरु कुटुम्बी, मंत्री और राजा सभी सोच और स्नेह से अत्यन्त व्याकुल हो गए॥1॥

*** धरि धीरजु करि भरत बड़ाई। लिए सुभट साहनी बोलाई॥ घर पुर देस राखि रखवारे। हय गय रथ बहु जान सँवारे॥2॥

भावार्थ:

फिर जनकजी ने धीरज धरकर और भरतजी की बड़ाई करके अच्छे योद्धाओं और साहनियों को बुलाया। घर, नगर और देश में रक्षकों को रखकर, घोड़े, हाथी, रथ आदि बहुत सीसवारियाँ सजवाईं॥2॥

*** दुधरी साधि चले ततकाला। किए बिश्रामु न मग महिपाला॥ भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागे॥3॥

भावार्थ:

वे दुधड़िया मुहूर्त साधकर उसी समय चल पड़े। राजा ने रास्ते में कहीं विश्रामभी नहीं किया। आज ही सबेरे प्रयागराज में स्नान करके चले हैं। जब सब लोग यमुनाजी उतरने लगे,॥3॥

*** खबरि लेन हम पठए नाथा। तिन्ह कहि अस महि नायउ माथा॥ साथ किरात छ सातक दीन्हे। मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे॥4॥

भावार्थ:

तब हे नाथ! हमें खबर लेने को भेजा। उन्होंने (दूतों ने) ऐसा कहकर पृथ्वी पर सिर नवाया। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ने कोई छह-सात भीलों को साथ देकर दूतों को तुरंत विदा कर दिया॥4॥

दोहा :

*** सुनत जनक आगवनु सबु हरषेउ अवध समाजु। रघुनंदनहि सकोचु बड़ सोच बिबस सुरराजु॥272॥

भावार्थ:

जनकजी का आगमन सुनकर अयोध्या का सारा समाज हर्षित हो गया। श्री रामजी को बड़ा संकोच हुआ और देवराज इन्द्र तो विशेष रूप से सोच के वश में हो गए॥272॥

चौपाई :

*** गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहै केहि दूषनु देई॥ अस मन आनि मुदित नर नारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी॥1॥

भावार्थ:

कुटिल कैकेयी मन ही मन गलानि (पश्चाताप) से गली जाती है। किससे कहे और किसको दोष दे? और सब नर-नारी मन में ऐसा विचार कर प्रसन्न हो रहे हैं कि (अच्छा हुआ जनकजी के आने

से) चार (कुछ) दिन और रहना हो गया॥1॥

*** एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सबु कोऊ॥ करि मज्जनु पूजहिं नर नारी।
गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥2॥

भावार्थ:

इस तरह वह दिन भी बीत गया। दूसरे दिन प्रातःकाल सब कोई स्नान करने लगे। स्नान करके सब नर-नारी गणेशजी, गौरीजी, महादेवजी और सूर्य भगवान की पूजा करते हैं॥2॥

*** रमा रमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी॥ राजा रामु जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी॥3॥

भावार्थ:

फिर लक्ष्मीपति भगवान विष्णु के चरणों की वंदना करके, दोनों हाथ जोड़कर, आँचल पसारकर विनती करते हैं कि श्री रामजी राजा हों, जानकीजी रानी हों तथा राजधानी अयोध्या आनंद की सीमा होकर-॥3॥

*** सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहि रामु करहुँ जुबराजा॥ एहि सुख सुधाँ सींचि सब काहू। देव देहु जग जीवन लाहू॥

भावार्थ:

फिर समाज सहित सुखपूर्वक बसे और श्री रामजी भरतजी को युवराज बनावें। हे देव इस सुख रूपी अमृत से सींचकर सब किसी को जगत में जीने का लाभ दीजिए॥4॥

दोहा :

*** गुर समाज भाइन्ह सहित राम राजु पुर होउ। अछत राम राजा अवध मरिअ माग सबु कोउ॥273॥

भावार्थ:

गुरु, समाज और भाइयों समेत श्री रामजी का राज्य अवधपुरी में हो और श्री रामजी के राजा रहते ही हम लोग अयोध्या में मरें। सब कोई यही माँगते हैं॥273॥

चौपाई :

*** सुनि सनेहमय पुरजन बानी। निंदहिं जोग बिरति मुनि ग्यानी॥ एहि बिधि नित्यकरम करि पुरजन। रामहिं करहिं प्रनाम पुलकि तन॥1॥

भावार्थ:

अयोध्यावासियों की प्रेममयी वाणी सुनकर जानी मुनि भी अपने योग और वैराग्य की निंदा करते हैं। अवधवासी इस प्रकार नित्यकर्म करके श्री रामजी को पुलकितशरीर हो प्रणाम करते हैं॥1॥

*** ऊँच नीच मध्यम नर नारी। लहहिं दरसु निज निज अनुहारी॥ सवधान सबही सनमानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं॥2॥

भावार्थ:

ऊँच, नीच और मध्यम सभी श्रेणियों के स्त्री-पुरुष अपने-अपने भाव के अनुसार श्रीरामजी का दर्शन प्राप्त करते हैं। श्री रामचन्द्रजी सावधानी के साथ सबका सम्मान करते हैं और सभी कृपानिधान श्री रामचन्द्रजी की सराहना करते हैं॥2॥

*** लरिकाइहि तें रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी॥ सील सकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ॥3॥

भावार्थ:

श्री रामजी की लड़कपन से ही यह बान है कि वे प्रेम को पहचानकर नीति का पालन करते हैं। श्री रघुनाथजी शील और संकोच के समुद्र हैं वे सुंदर मुख के (या सबके अनुकूल रहने वाले), सुंदर नेत्र वाले (या सबको कृपा और प्रेम की दृष्टि से देखने वाले) और सरल स्वभाव हैं॥3॥

*** कहत राम गुन गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे॥ हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिन्हहि रामु जानत करि मोरे॥4॥

भावार्थ:

श्री रामजी के गुण समूहों को कहते-कहते सब लोग प्रेम में भर गए और अपने भाग्य की सराहना करने लगे कि जगत में हमारे समान पुण्य की बड़ी पूँजी वाले थोड़े ही हैं, जिन्हें श्री रामजी अपना करके जानते हैं (ये मेरे हैं ऐसा जानते हैं)॥4॥

दोहा :

*** प्रेम मगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु। सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेसु॥274॥

भावार्थ:

उस समय सब लोग प्रेम में मग्न हैं। इतने में ही मिथिलापति जनकजी को आते हुए सुनकर सूर्यकुल रूपी कमल के सूर्य श्री रामचन्द्रजी सभा सहित आदरपूर्वकजल्दी से उठ खड़े हुए॥274॥